हेमलता - ०१

तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥०१॥

अर्थ - देवी को प्रणाम है। महादेवी को प्रणाम है। शिवा को निरन्तर प्रणाम है। प्रकृति को प्रणाम है। भद्रा को प्रणाम है। हम निश्चयपूर्वक एकाग्रचित्त से आपके समक्ष विनीत हैं।

श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता हेमलताटीका

दीव्यति आनन्देन क्रीडतीति स्त्रीविवक्षया देवी। देवी दिवो दुहितरेति श्रुतिः। ज्ञानानां चिन्मयानन्देति श्रुतिः। यथोक्तमस्ति ऋग्वेदे - उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी। प्र णो देवी सरस्वतीति श्रुतिः। देवीं वाचमजनयन्त देवा इत्याथर्वणे। महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी तस्मान्महादेवीति। यथोक्तमस्ति देवीपुराणे -

पूज्यते या सुरैः सर्वैर्महांश्चैव प्रमाणतः।
धातुर्महेति पूजायां महादेवी ततः स्मृता॥

सा ब्रह्मरूपशिवलिङ्गधारिणी। यथा लिङ्गे -

लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः॥

पुनः शिवा च। यथोक्तं ब्रह्मवैवर्ते -

शिवा कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया।
प्रिये दातरि चाशब्दः शिवा तेन प्रकीर्तिता॥

तस्मिन्नेवोच्यते पुनः -

शश्च कल्याणवचन इरेवोत्कृष्टवाचकः।
समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः॥
श्रेयःसङ्घोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता।
शिवराशिर्मूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता॥
शिवो हि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता॥

देवीपुराणेऽपि -

शिवा मुक्तिः समाख्याता योगिनां मोक्षगामिनी।
शिवाय यां जपेद्देवीं शिवा लोके ततः स्मृता॥

वाममार्गे शुभाशुभपरिज्ञानहेतवे शिवाबलिरुक्ता। यथा तन्त्रसारे मन्त्रः -

गृहण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृहण बलिं तव॥

कल्याणकारिणी शिवाख्या भवति। यथाथर्वणे -

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।

शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि॥

तस्मिन्नेवोच्यते पुनः - शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः।

यजुषामपि श्रुतिः - या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुद्रस्य (रुतस्य) भेषजी।

ततः प्रकृतिः। निर्गुणा सगुणा च। अत्र वै निर्गुणा प्रोक्ता गुणातीता परात्परा। न तया क्रियते सृष्टिर्न लयो वा गुणात्मकः॥ सृष्टिकर्मणि सगुणा पञ्चधा श्रीमद्देवीभागवते ब्रह्मवैवर्ते च -

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चमी स्मृता॥

श्रीमद्भगवद्गीतायामपरा प्रकृतिरष्टधा च -

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

तत्रैवाग्रे परा प्रोक्ता -

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

स्वात्मनि त्रिगुणं दधाति, यथा मात्स्ये -

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता॥

अस्या निरुक्तिर्ब्रह्मवैवर्ते -

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥
गुणे प्रकृष्टे सत्त्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तामसः स्मृतः॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता।
प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥
प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

चान्ते भद्रा। भद्रमिति कल्याणं मङ्गलं वा। सर्वजीवकल्याणवाचिका भद्रा। रक्षणार्थं वा भद्रा रक्षणशक्तिः। यथाथर्वणे भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वत इति।

अर्थ - जो प्रकाशित होती है, आनन्द से क्रीडा करती है, उसमें स्त्रीविवक्षा से देवी शब्द की भावना होती है। श्रुति कहती है - देवी आकाश अथवा स्वर्ग की पुत्री है। ज्ञानमण्डल की चिदानन्दस्वरूपिणी है। जैसा कि ऋग्वेद में कहते हैं - उषा नाम वाली देवी अपने प्रकाश से विश्व के अन्धकार को नष्ट करती है। श्रुति कहती है कि हम दिव्य स्वरूप वाली नित्य प्रवाहमयी देवी को निश्चय ही प्रणाम करते हैं। अथर्ववेद में कहते हैं - देवताओं ने वाक्शक्तिरूपिणी देवी को प्रकट किया।

जो महान् है, मूलप्रकृति और सबकी स्वामिनी है, विश्व में सबों से पूजित है, वह महादेवी है। जैसा कि देवीपुराण में कहा गया है - जो सबों से महान् है, देवताओं के द्वारा जिसकी पूजा होती है, 'मह' धातु का पूजा के अर्थ में प्रयोग होता है, अतः उन्हें महादेवी कहते हैं। वह महादेवी परब्रह्मरूपी शिवलिङ्ग को धारण करने वाली है। जैसा कि लिङ्गपुराण में कहते हैं - लिङ्ग की वेदी (आधार) महादेवी हैं और लिङ्ग साक्षात् महान् ईश्वर हैं। सबों को अपने अन्दर समाहित करने से उसका नाम

लिङ्ग है और वहीं सभी देवता रहते हैं।

फिर उन्हें शिवा कहा। जैसा कि ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है - शिवजी की प्रिया, कल्याणमयी, कल्याण देने वाली है, प्रिय और दान के अर्थ में यह शब्द है अतः उनका नाम शिवा है। उसी ग्रन्थ में पुनः कहते हैं - शिवा शब्द में 'श' का अर्थ कल्याण है, 'इ' का अर्थ उत्कृष्ट समूह है, 'वा' का अर्थ देने वाला है। जो कल्याण का उत्तम समूह प्रदान करे, उसे शिवा कहते हैं। यह साक्षात् कल्याण का भण्डार हैं, अतः शिवा कहाती हैं। शिव शब्द कल्याण का वाचक है एवं 'आ' प्रदान करने का वाचक है। जो परम कल्याण अर्थात् निर्वाण मोक्ष देने वाली हैं, उन्हें शिवा कहते हैं।

देवीपुराण में भी कहते हैं - योगियों को मोक्षमार्ग में भेजने वाली मुक्ति को शिवा कहते हैं। कल्याण के निमित्त देवी का जप करना चाहिए, अतः उन्हें संसार में शिवा कहते हैं। वाममार्ग में शुभाशुभ के ज्ञान की सिद्धि हेतु शिवाबलि बतायी गयी है। इसका मन्त्र तन्त्रसार में है - हे महाभाग्यवती देवि ! हे कालाग्नि के समान विकट स्वरूप वाली ! हे शिवे ! अपने निमित्त दी जा रही बलि को स्वीकार करो और मुझे शुभाशुभ का फल बताओ।

कल्याण करने वाली को शिवा कहते हैं। जैसा कि अथर्ववेद में है - मनुष्यों का कल्याण हो। गायों और घोड़ों का कल्याण हो। मेरा और बाकी सबों का भी कल्याण हो। उसी ग्रन्थ में पुनः कहते हैं कि मातृकागण हमारी आयु के लिए कल्याणकारिणी हों। यजुर्वेद में भी श्रुति है - जो जो शिवजी के कल्याणकारी शरीर हैं, वे सब संसार के कष्ट और दुःख की चिकित्सा करें।

उसके बाद प्रकृति के विषय में कहा। यह निर्गुणा और सगुणा होती है। यहाँ निर्गुणा उसे कहते हैं जो सबों से परे और गुणों से अतीत है। उसके द्वारा गुणात्मक रचना या संहार का कार्य नहीं किया जाता। सृष्टि के कार्य में सगुणा पांच प्रकार की हो जाती है। श्रीमद्देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहते हैं - गणेशजी की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री, इस प्रकार सृष्टि के समय प्रकृति पांच प्रकार की कही गयी है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आठ प्रकार की अपरा प्रकृति बतायी गयी है - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहङ्कार, ये मेरी (भगवान् की) आठ प्रकारों में विभाजित प्रकृति है। वहीं पर आगे पराप्रकृति के विषय में बताया - हे महाबाहो ! जो इन से भिन्न चेतनात्मिका है, उसे मेरी पराप्रकृति जानो, जिसके द्वारा यह संसार धारण किया जाता है।

यह अपने भीतर तीनों गुणों को धारण करती है। जैसा कि मत्स्यपुराण में वर्णन है - सात्विक, राजस और तामस, ये तीन गुण बताए गए हैं। इन तीनों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। इसके नाम का रहस्य ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहते हैं - 'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट है। कृति का अर्थ सृष्टि है। जो सृष्टि करने में प्रकृष्ट (सर्वोत्तम) है, उस देवी को प्रकृति कहते हैं। उत्तम गुण सत्वगुण है, उसके निमित्त वेद में 'प्र' शब्द बताया गया है। मध्यम गुण रजोगुण है, उसके लिए 'कृ' शब्द है। 'ति' शब्द से तमोगुण बताया गया है। इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त स्वरूप वाली, जिसमें सभी शक्तियों का समन्वय है, वह सृष्टिकार्य में प्रधान होने से प्रकृति कहलाती है। दूसरा अर्थ यह है कि 'प्र' शब्द प्रथम का द्योतक है और सृष्टि को कृति कहते हैं। जो देवी सृष्टि से पहले भी रहती हैं, उन्हें प्रकृति कहते हैं।

सबसे अन्त में भद्रा कहा। भद्र का अर्थ कल्याण या मङ्गल है। सभी जीवों के कल्याण का वाचन करने वाली भद्रा है। रक्षा के अर्थ में भी भद्रा रक्षणशक्ति के रूप में बतायी जाती है। जैसा कि अथर्ववेद में कहा - भद्रा (रक्षा या कल्याणकारिणी) शक्ति यजमान के निमित्त आप्लावन (विस्तार) करती है। इस प्रकार अर्थ है।

प्रश्नकर्ता मोहित श्रीवास्तव कायस्थों का क्या वर्ण है ! गुरुजी -? मैंने गूगल पर देखा तो और भ्रमित हो गया क्योंकि वहाँ तो बता दिया कि ब्राह्मण वर्ण और क्षत्रिय वर्ण दोनों धारण कर सकते हैं कायस्थ। यह मैं इसलिए पूछ रहा हूँ गुरुजी, मैं स्वयं एक कायस्थ हूँ। अभी तक जान नहीं पाया, क्या वर्ण है मेरा ?

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु कायस्थों का वर्ण बहुधा विवादों में रहता है। लोग -अपने अपने मत से उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर आदि सर्वत्र व्यवस्थित करने का प्रयास करते रहते हैं। इस सन्दर्भ में अनेकानेक ग्रन्थों के अपने स्वतन्त्र अध्ययन के आधार पर मुझे जो शास्त्रविषयक ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं, उन्हें मैं आपके समक्ष रखता हूँ। कायस्थ समाज अति प्राचीन काल से भारत में स्थित है। ब्रह्मपुराण में वर्णन है कि राजा इन्द्रद्युम्न जब दक्षिण दिशा की यात्रा में थे, तो उनके साथ सभी पुरवासी भी गए। निम्न प्रमाण से यह भी सिद्ध होता है कि चारों वर्णों की सभी जातियां भारत की ही

ऐतिहासिक रूप से मूलनिवासी हैं। उन पुरवासियों में सभी जातियों के लोग थे -

वेष्टिताः शस्त्रहस्तैश्च पद्मपत्रायतेक्षणाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम्॥
वणिग्ग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः।
धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः॥
अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः।
तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः॥
रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा।
तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा॥
फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा।
तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः॥
गोपाला नापिताश्चैव तथान्ये वस्त्रसूचकाः।
मेषपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः॥
धान्यविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये।
गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः॥
गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः।
शैलूषाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः॥
कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः।
विषघ्ना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः॥
व्योकारास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च रूठकाः।
कौषकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः॥
दण्डकाराश्चासिकाराः सुराधूतोपजीविनः।
मल्ला दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिणः॥
तन्तुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठकाः।
लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्युपजीविनः॥
गजवैद्याश्ववैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नराः।
वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः॥
एते नागरकाः सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिताः।
अनुजग्मुस्तु राजानं समस्तपुरवासिनः॥
यथा व्रजन्तं पितरं ग्रामान्तरं समुत्सुकाः।
अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा तं तेऽपि नागराः॥
(ब्रह्मपुराण, अध्याय (४४ -

श्लोकों का सामान्य अर्थ है कि राजा इन्द्रद्युम्न जब अपनी यात्रा पर चले तो उनके पीछे पीछे कमल के पत्तों के समान दीर्घ नेत्रों वाले शस्त्रधारी अङ्गरक्षक चले। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी राजा के पीछे पीछे चले। व्यापारीगण, ग्रामीण और नगरवासी अपने धन, रत्न, स्वर्ण, स्त्री एवं परिकरों से युक्त होकर चले। हथियार बेचने वाले, पानबीड़ा का व्यापार करने वाले-, घास और लकड़ी बेचने वाले, रङ्गरेज, मांस बेचने वाले, तेल और वस्त्र बेचने वाले, फल और पत्तों का व्यापार करने वाले, हजारों घसियारे और धोबी, ग्वाले, नाई, दर्जी, भेड़बकरी पालने वाले-, हिरण और हंस पालने वाले, धान, सत्तू, गुड और नमक बेचने वाले, नृत्यगीत करने वाले-, मंगलगान करने वाले, अभिनेता, पुराणों के अर्थ जानने वाले कथावाचक, विभिन्न काव्यों के

विशेषज्ञ और काव्य लिखने वाले कविगण, गरुडसम्बन्धी मन्त्रों से विष का उपचार करने वाले, लौहकार, ताम्रकार, कांस्यकार, ठठेरा, जौहरी, स्वर्णकार, कुश आदि से आसन बनाने वाले, चित्रकार, साफ सफाई करने वाले मेहतर आदि, लाठी और तलवार बनाने वाले, मदिरा से आजीविका चलाने वाले, पहलवान, दूत, कायस्थ और अन्य कर्मों को करने वाले, बुनकर, शृंगार करने वाले, पशुपक्षियों से आजीविका चलाने वाले-, हाथी और घोड़े के चिकित्सक, मनुष्यों के चिकित्सक, वृक्षवनस्पतियों के - चिकित्सक, गौ आदि के चिकित्सक, ये सब नागरिक एवं अन्य जिनका नाम इस सूची में नहीं है, वे सब भी राजा के पीछे-पीछे चले। जैसे दूसरे गांव जाने वाले पिता के पीछे पीछे उत्सुक होकर पुत्र जाते हैं, वैसे ही वे नगरवासी भी राजा इन्द्रद्युम्न के पीछे पीछे चले।

अब प्रश्न यह है कि कायस्थ कौन हैं ? कायस्थ एक विशेषणात्मक स्थिति है। काये शरीरे तिष्ठति स्थितो वा कायस्थः। जो शरीर में स्थित रहे वह कायस्थ है। भगवान् चित्रगुप्त को कायस्थ कहते हैं क्योंकि सूक्ष्मरूप से सभी प्राणियों के देह में स्थित होकर वे कर्मों का हिसाब रखते हैं। भगवान् चित्रगुप्त के उद्भव के विषय में संक्षेपतः मैं निम्न उपाख्यान बताता हूँ। पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में कहते हैं -

क्षणं ध्यानस्थितस्यास्य सर्वकायाद्विनिर्गतः।
दिव्यरूपः पुमान् हस्ते मसीपात्रञ्च लेखनीम्॥
चित्रगुप्त इति ख्यातो धर्मराजसमीपतः।
प्राणिनां सदसत्कर्मलेख्याय स निरूपितः॥
ब्रह्मणातीन्द्रियज्ञानी देवाग्न्योर्यज्ञभुक् स वै।
भोजनाच्च सदा तस्मादाहुतिर्दीयते द्विजैः॥
ब्रह्मकायोद्भवो यस्मात् कायस्थो वर्ण उच्यते।
नानागोत्राश्च तद्वंश्याः कायस्था भुवि सन्ति वै॥

सरल शब्दों में अर्थ है कि ध्यानमग्न अवस्था में ब्रह्मदेव के शरीर से एक दिव्य स्वरूप वाला पुरुष उत्पन्न हुआ जिसने अपने हाथों में कलम और स्याही दवात धारण किए हुए थे। उनका नाम-चित्रगुप्त हुआ। वे धर्मराज के पास जाकर (यमराज) प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म के लेखनकर्म में नियुक्त हो गए। मात्र क्रिया ही नहीं, जो हमारे मन में भाव आते हैं, चित्रगुप्त उन्हें भी जानते हैं। ये देवताओं के समान ही अग्नि के माध्यम से आहुतियों का आहार ग्रहण करते हैं। अतः ब्राह्मणों के द्वारा इन्हें हवन आहुति प्रदान की जाती है। ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न होने के कारण इनका वर्ण-'कायस्थ' हुआ। विभिन्न गोत्रों में उत्पन्न उनके वंशज संसार में कायस्थ कहलाते हैं।

अब यह तो सामान्यतम कथापरिचय हो गया। चित्राणां जीवकृतपापपुण्यादिविचित्राणां कर्मणो धर्मस्य च गुप्तं गोपनं रक्षणं यस्माच्चित्रगुप्तः। विभिन्न स्वरूप वाले जीवों के द्वारा किए गए विचित्र कर्म और धर्म को गुप्त रखने और रक्षा करने से इनका नाम चित्रगुप्त है। ये यमराज के अधीनस्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीन अधिकारियों का -ल, मृत्यु और चित्रगुप्त में से एक हैं। तत्वतः कहें तो स्वयं धर्मराज ने ही एक अंश से स्वयं को चित्रगुप्तस्वरूप में ब्रह्मदेव के शरीर से उद्भूत किया, अतः चित्रगुप्त का स्थान यमराज के चौदह स्वरूपों में भी है। यमराज के चौदह स्वरूप निम्न हैं यम -, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र एवं चित्रगुप्त।

अब भगवान् चित्रगुप्त की नियुक्ति यमराज के दरबार में कैसे हुई, इसके सन्दर्भ में एक रोचक कथा है। सम्पूर्ण प्राणियों के मन की बात जानने की साक्ष्यसिद्धि के निमित्त उन्होंने लोकसाक्षी भगवान् सूर्य की उपासना करना प्रारम्भ किया। सूर्यदेव चित्रगुप्त की तपस्या से प्रसन्न हुए और उन्होंने सर्वज्ञता का वरदान दिया। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में कहते हैं -

एवन्तु स्तुवतस्तस्य चित्रस्य विमलात्मनः।
तथा तुष्टः सहस्रांशुः कालेन महता विभुः॥

अब्रवीद्वत्स भद्रं ते वरं वरय सुव्रत।
सोऽब्रवीद्यदि मे तुष्टो भगवांस्तीक्ष्णदीधिते॥
प्रौढत्वं सर्वकार्येषु जायतां सन्मतिस्तथा।
तत्तथेति प्रतिज्ञातं सूर्येण वरवर्णिनि॥
ततः सर्वज्ञतां प्राप्तश्चित्रो मित्रकुलोद्भवः।
तं ज्ञात्वा धर्मराजस्तु बुद्ध्या परमया युतः।
चिन्तयामास मेधावी लेखकोऽयं भवेद्यदि॥
जाता मे सर्वसिद्धिश्च निर्वृतिश्च परा भवेत्।
एवं चिन्तयतस्तस्य धर्मराजस्य भामिनि॥
अग्नितीर्थं गतश्चित्रः स्नानार्थं लवणाम्भसि।
स तत्र प्रविशन्नेव नीतस्तु यमकिङ्करैः॥
सशरीरो महादेवि यमादेशपरायणैः।
स चित्रगुप्तनामाभूद्विश्वचारित्रलेखकः॥

सरल शब्दों में अर्थ है कि निर्मल मन वाले भगवान् चित्र ने दीर्घकाल तक सूर्यदेव की आराधना करके उन्हें सन्तुष्ट किया और सूर्यदेव ने उनकी मङ्गलकामना करके आशीर्वाद दिया एवं उनसे अपना अभीष्ट वरदान मांगने को कहा। चित्र ने कहा कि हे प्रचण्ड रश्मियों वाले देव यदि आप मेरी तपस्या से सन्तुष्ट हैं तो मुझे अच्छी मति और प्रत्येक कर्म में वरिष्ठता ! प्रदान करें। सूर्यदेव ने उन्हें ऐसा ही होने का वरदान दिया और इस प्रकार सूर्यवंशी चित्र सब कुछ जानने वाले हो गए। इस बात को जब धर्मराज ने जाना तो उन्होंने बड़ा विचार किया कि ये मेधावी यदि मेरे यहाँ लेखक बन जाएं तो मेरा बहुत बड़ा कार्य हो जाएगा एवं मैं भी निश्चिन्त रहूँगा। यमराज ऐसा सोच ही रहे थे कि चित्र समुद्र के किनारे स्थित अग्नितीर्थ में स्नान करने के लिए पहुंचे। वहाँ जल में प्रवेश करते ही यमराज के आदेशपालक दूत उन्हें सशरीर यमलोक ले आए और इस प्रकार वे चित्रगुप्त के नाम से पूरे विश्व का चरित्र लिखने वाले बन गए।

अब यहाँ कुछ लोग एक स्वाभाविक प्रश्न करेंगे कि पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में चित्रगुप्त को ब्रह्मदेव के शरीर से उत्पन्न बताया गया और स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में उन्हें मित्रकुलोद्भव बता रहे हैं (सूर्यवंशी), यह विरोधाभास क्यों ? इसका उत्तर है कि स्कन्दपुराण के मानसखण्ड में वर्णित पृथ्वीशाप, शिवपुराण आदि में वर्णित शिवशाप आदि के कारण ब्रह्मदेव की प्रत्यक्ष पूजा बहुधा नहीं होती। उन्हें सूर्यरूप में पूजा जाता है। पञ्चायतनक्रमार्चन और आथर्वणपरम्परा में भी ब्रह्मदेव को सूर्यरूप में ही स्थापित किया गया और दोनों का समान नाम 'हिरण्यगर्भ' उल्लिखित किया गया है अतः यहाँ अभेदबुद्धि से सूर्य को ब्रह्मार्थ में रूढ़ समझना चाहिए।

अब एक रहस्यमय गुप्त वृत्तान्त प्रकाशित करता हूँ। विराट् ब्रह्म के चरणों से दो तत्त्व की उत्पत्ति हुई थी। एक तो शूद्रवर्ण और दूसरे स्याही के स्वामी, जिनका नाम था सर्व। यही सर्व बाद में चित्र -, और उसके बाद चित्रगुप्त के नाम से कैसे प्रसिद्ध हुए, इसके विषय में वर्णन करता हूँ। जब चित्रगुप्त की नियुक्ति यमराज के यहाँ कर्मलेखक के रूप में हो गयी तो उन्होंने अपने तीन स्वरूप बनाए। आचारनिर्णयतन्त्र में रहस्यकथा है -

ब्रह्मपादांशतः शूद्रमसीशौ द्वौ बभूवतुः।
एको मसीशः सर्वाख्यः सर्वाणीहृदयद्विजात्॥
कुलप्रदीपः स्वीयानां जातीनां पूततास्पृहः।
बगलेति महाविद्यां गृहीत्वा साधयन् मुदा॥
सर्वाणीहृदयाख्यस्य पण्डितस्य प्रसादतः।
वरं याचितवान् भक्त्या त्रिलोकाधिपतिं गुरो॥

कृपया कुरु मां नाथ त्वमेव बगला मम।
गुरुणापि वरो दत्तो राज्यं भुक्त्वा पुनर्भवान्॥
त्रिलोकाधिपतिर्भूत्वा मुदा तत्र सुखिष्यति।
गुर्वाज्ञया मसीशः स राज्यभोगी द्विजार्चनात्॥
विहाय देहं भूयश्च त्रिधारूपो बभूव ह।
चित्रगुप्तश्चित्रसेनश्चित्राङ्गद इति त्रयः॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले राजते चिरमुत्तमः।
चित्रगुप्तो महाविद्यां प्राप्य कुल्लाख्यविप्रतः॥
पुत्रान् याचितवान्नैव गुरोर्देवत्वमावहन्।
यमान्तिस्थो बभूवापि स्वर्मर्त्याधोविवेचकः॥
चिरं शुभाशुभं कर्म विविच्य शमनान्तिके।
यद्वदेत् सकलानान्तु तदेवाभोजयेद्यमः॥

सरल शब्दों में इसका अर्थ है कि विराट् ब्रह्म के चरणों से दो की उत्पत्ति हुई शूद्रवर्ण एवं स्याही के स्वामी -'सर्व'। इन अपने कुल को प्रकाशित करने वाले, पवित्रताप्रेमी सर्वदेव ने सर्वाणीहृदय नाम वाले ब्राह्मण से बगलामुखी महाविद्या का मन्त्र ग्रहण करके उनकी साधना की और सर्वाणीहृदय मुनि की कृपा से भक्तिपूर्वक तीनों लोकों का आधिपत्य मांगा। (देवी से) फिर उन्होंने गुरु से कहा कि आप ही मेरी बगलामुखी हैं । तो गुरु ने कहा कि पहले (गुरु और इष्ट में भेद न देखते हुए) राज्य का उपभोग करें और उसके बाद तीनों लोकों का आधिपत्य प्राप्त करके सुखी होंगे। गुरु की आज्ञा (पृथ्वी में) आप सर्वदेव राज्य का उपभोग कर (स्याही के स्वामी) और ब्राह्मणों का सत्कार करने से वे मसीशने लगे और फिर उस शरीर को छोड़कर उन्होंने अपने तीन स्वरूप बनाए चित्रगुप्त -, चित्रसेन और चित्राङ्गद। इन तीनों रूपों से वे क्रमशः स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में दीर्घकालिक राज्य करने लगे। इनमें जो चित्रगुप्त थे, उन्होंने मन्त्रबल से अपना वंश बढ़ाने की इच्छा नहीं की, अपितु देवता बनना चाहा एवं वे 'कुल्ल' नामक ब्राह्मण से महाविद्या की दीक्षा लेकर यमराज के पास चले गए। वहाँ स्वर्गलोक, मर्त्यलोक तथा पाताललोक के कर्मविवेचक बन गए। दीर्घकाल के शुभ और अशुभ कर्म की विवेचना करके वे सम्पूर्णता से जैसा कहते हैं, उसके ही अनुसार यमराज प्राणियों को कर्म का फलभोग प्रदान करते हैं।

कोशग्रन्थों में अम्बष्ठ शब्द को कायस्थजाति के पर्याय के रूप में बताया गया है। विप्राद्वैश्यायामुत्पन्नः कायस्थजातिविशेषः। ब्राह्मण पुरुष यदि वैश्य वर्ण की स्त्री में सन्तान उत्पन्न करे तो उसे अम्बष्ठ या कायस्थ कहते हैं। महाराज मनु भी यही बात कहते हैं - ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते। फिर इनका कार्य भी वर्णित है - घोड़े हांकना सूतजाति का कार्य है और चिकित्साकर्म अम्बष्ठों का है। -सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सितम्। रथ अम्बष्ठ चिकित्साप्रधान जाति है। कहीं कहीं इनका कर्म महावत का भी बताया गया है। जैसा कि श्रीमद्भागवत (हाथीवान) अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्राम मा चिरम्। - में श्रीकृष्ण भगवान् कुवलयापीड हाथी के महावत को कहते हैं

अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार से अम्बष्ठ अथवा कायस्थ तो वर्णसंकर हुए तो इनके लिए क्या संस्कार विधान है ? तज्जातिव्यपदेशार्थं न संस्कारार्थमिति। जातिव्यतिक्रम होने पर वर्णगत द्विजाति संस्कार तो नहीं होता है। इसमें मनुस्मृति समाधान करती है सजातिजानन्तरजाः षट्सुता द्विजधर्मिणः। शुद्धवर्ण एवं अनुलोमसंकर की छः जातियां -, जो द्विजाति के आपसी संसर्ग से उत्पन्न हुई हैं, अर्थात् ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता, ब्राह्मण पिता और वैश्य माता, क्षत्रिय पिता और वैश्य माता, ये तीन सन्तान तथा ब्राह्मणब्राह्मणी-, क्षत्रियक्षत्रियाणी-, वैश्यवैश्या से उत्पन्न तीन सन्तान-, इन छः का वेदोक्त उपनयन आदि संस्कार होता है।

किन्तु क्या कलियुग में भी ऐसा होगा ? इसपर टीकाकारगण कहते हैं अम्बष्ठादीनामुपनयनसंस्कारसत्त्वेऽपि इदानीन्तनानां - संस्कारलोपेन शूद्रत्वमतएव इदानीं क्षत्रियादीनां शूद्रत्वमेवमम्बष्ठादीनामपि। अम्बष्ठ आदि का जनेऊ आदि में अधिकार होने

पर भी, कालक्रम से संस्कार का लोप हो जाने से जैसे क्षत्रिय आदि भी संस्कारहीन होकर शूद्रत्व को प्राप्त हो जाते हैं, वैसे ही अम्बष्ठ आदि भी हो जाते हैं। आगे स्पष्ट किया कि यदि परम्परा से कई पीढ़ियों से संस्कारलोप हो गया हो, तब तो वैदिक यज्ञोपवीत आदि नहीं होगा किन्तु दोतीन पीढ़ी से बात बिगड़ी है तो व्रात्यदोष आदि का सकुटुम्ब प्रायश्चित्त करके पुनः - ये तु व्रात्यदोषप्रायश्चित्तमाचरन्ति तेषामुपनयनयोग्यता भवत्येव। - वैदिक संस्कार में दीक्षित हो सकते हैं

अब बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि अम्बष्ठ का पर्याय कायस्थ बताया किन्तु उसका काम या तो चिकित्सक बनना है या फिर महावत जबकि कायस्थों का और स्वयं चित्रगुप्त भगवान् का भी कार्य बहीखाते का है, अतः यहाँ जिस कायस्थ को वर्णसंकर अम्बष्ठ का पर्यायवाची बताया गया है, वो भिन्न है। यह तर्क व्यवहार में युक्तियुक्त भी है, निजी रूप से मैं भी यही मानता हूँ कि जैसे गौ आदि एक ही शब्द अनेकों स्थानों पर गाय और पृथ्वी के नाम से भेदार्थ को धारण करते हैं, वैसे ही कायस्थ शब्द भी भेदार्थ को धारण करता है। अम्बष्ठ वाले प्रकरण में आया कायस्थ शब्द बहीखाते वाले कायस्थ समाज से भिन्न है।

अब मूल प्रश्न यह है कि इनका वर्ण क्या माना जाए ? ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण क्या ब्राह्मण मानें ? इस बात से स्वयं कायस्थ समाज भी सहमत नहीं होगा क्योंकि ऐसे तो पूरा विश्व ही ब्रह्मदेव के किसी न किसी रूप और भाग से ही उत्पन्न हुआ है। क्या क्षत्रिय मान लें ? क्योंकि स्कन्दपुराण में कायस्थ चित्रगुप्त को सूर्यवंशी बताया गया है, ग्रहयज्ञों में सूर्यदेव को कश्यपपुत्र, रक्तवर्ण क्षत्रिय बताया गया है क्षत्रियं काश्यपं रक्तम्। और सूर्यपुत्र यमराज और चित्रगुप्त सबों पर - शासन करते हैं, राजा के समान न्याय करके दण्ड आदि देते हैं, तो कायस्थों को क्षत्रिय मान लिया जाए ? अथवा क्या इन्हें वैश्यवर्ण का माना जाए क्योंकि ये व्यापार आदि का और अन्य विषयों का हिसाब रखते हैं ? या फिर जैसा कि कालान्तर में संस्कारलोप होने से क्षत्रिय एवं अन्य कायस्थोपाख्य अम्बष्ठ आदि शूद्रतुल्य हो गए, स्वयं चित्रगुप्त के मूलरूप सर्वसंज्ञक देवता भी शूद्रवर्ण के साथ ही विराट् ब्रह्म के चरणों से उत्पन्न हुए तो इन्हें शूद्रवर्ण का माना जाए ? यह सब बहुत से प्रश्न कायस्थ बन्धुओं के मन में आते रहते हैं और राजनैतिक विचारधारा वाले लोग भ्रम एवं वैमनस्य बढ़ाते रहते हैं। मैं इसका सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत करता हूँ।

भविष्यपुराण में कहते हैं -

दत्तात्रेय उवाच
त्रिकालज्ञं महाप्राज्ञं पुलस्त्यमुनिपुङ्गवम्।
उपसङ्गम्य पप्रच्छ भीष्मः शस्त्रभृतां वरः॥
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां तथैव च।
सम्भवः सङ्करादीनां श्रुतो विस्तरतो मया॥
कायस्थोत्पत्तयो लोके ख्याताश्चैव महामुने।
भूय एव महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः॥
वैष्णवा दानशीलाश्च पितृयज्ञपरायणाः।
सुधियः सर्वशास्त्रेषु काव्यालङ्कारबोधकाः॥
पोष्टारो निजवर्गाणां ब्राह्मणानां विशेषतः।
तानहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने॥

भगवान् दत्तात्रेय बोले महान् प्रज्ञा वाले -, त्रिकालदर्शी मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य के पास जाकर शस्त्रधारियों में अग्रणी पितामह भीष्म ने इस प्रकार पूछा चारों वर्ण" -, आश्रम, वर्णसंकर आदि की उत्पत्ति मैंने आपके मुख से विस्तारपूर्वक सुनी। अब मैं आपके मुख से कायस्थों की उत्पत्ति का वर्णन सुनना चाहता हूँ। ये कायस्थ भगवान् विष्णु के भक्त, उदार, पूर्वजपितरों की आराधना - करने वाले, अच्छी बुद्धि से युक्त, सभी शास्त्रों के विशेषज्ञ, काव्यअलंकार को समझने वाले-, अपने समाज का भरण पोषण

करने वाले और विशेषकर ब्राह्मणों का पालन करने वाले होते हैं। हे महामुनि इनके विषय में मैं सुनना चाहता हूँ !, आप कृपया बताएं।"

पुलस्त्य उवाच
शृणु गाङ्गेय वक्ष्यामि कायस्थोत्पत्तिकारणम्।
न श्रुतं यत्त्वया पूर्वं तन्मे कथयतः शृणु॥
येनेदं सकलं विश्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
उत्पाद्य पाल्यते भूयो निधनाय प्रकल्पते॥
अव्यक्तः पुरुषः शान्तो ब्रह्मा लोकपितामहः।
यथासृजत् पुरा विश्वं कथयामि तव प्रभो॥
मुखतोऽस्य द्विजा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा।
ऊरुभ्याञ्च तथा वैश्याः पद्भ्यां शूद्राः समुद्भवाः॥ द्विचतुःषट्पदादींश्च प्लवङ्गमसरीसृपान्।
एककालेऽसृजत् सर्वं चन्द्रसूर्यग्रहांस्तथा॥

पुलस्त्य मुनि बोले मैं कायस्थों की उत्पत्ति का कारण बताता हूँ ! हे गङ्गापुत्र भीष्म -, सुनो। उसे तुमने पहले नहीं सुना है। जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व बनाया जाता है, पालन किया जाता है और जिनमें यह पुनः लीन हो जाता है, उन अव्यक्त शान्तपुरुष लोकपितामह ब्रह्मदेव ने जिस प्रकार यह संसार बनाया, वह बताया हूँ। उनके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य एवं चरणों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। दो पैर, चार पैर, छः पैर वाले जीव, उड़ने और रेंगने वाले जीव भी उनसे ही उत्पन्न हुए। एक समय उन्होंने चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहों का भी निर्माण किया।

इसके बाद ब्रह्मदेव ने कश्यपादि प्रजापतियों को आगे की सृष्टि का विस्तार करने का आदेश दिया और स्वयं समाधि में चले गए। मैं सभी श्लोकों को नहीं लिख रहा हूँ, मात्र प्रधान श्लोकों को ही प्रसङ्गवश लिख रहा हूँ। ग्यारह सहस्र वर्षों तक ब्रह्मदेव समाधि में स्थित रहे। फिर उनके शरीर से हाथों में कलम और दवात लिए हुए एक सांवला पुरुष प्रकट हुआ। उसके नेत्र कमल के समान थे, भुजाएं विशाल थीं, शङ्ख के समान गला और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखमण्डल था। फिर ब्रह्माजी ने समाधि से निवृत्त होकर उस व्यक्ति को देखा। तब उस व्यक्ति ने ब्रह्मदेव से अपना नाम और काम पूछा।

इत्याकर्ण्य ततो ब्रह्मा पुरुषं स्वशरीरजम्।
प्रहृष्य प्रत्युवाचेदमानन्दितमतिः पुनः॥
स्थिरचित्तं समाधाय ध्यानस्थमतिसुन्दरम्।
मच्छरीरात् समुद्भूतस्तस्मात् कायस्थसंज्ञकः॥
चित्रगुप्तेति नाम्ना वै ख्यातो भुवि भविष्यसि।
धर्माधर्मविवेकार्थं धर्मराजपुरे सदा॥
स्थितिर्भवतु ते वत्स ममाज्ञां प्राप्य निश्चलाम्।
क्षत्रवर्णोचितो धर्मः पालनीयो यथाविधि॥
प्रजाः सृजत भो पुत्र भुवि भारसमन्विताः।
तस्मै दत्त्वा वरं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत॥

अपने शरीर से उत्पन्न उस पुरुष की बात सुनकर ब्रह्मदेव बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा मेरे शरीर से उत्पन्न " - होने के कारण तुम्हारी'कायस्थ' संज्ञा होगी। तुम संसार में चित्रगुप्त के नाम से प्रसिद्ध होगे। धर्म और अधर्म के विवेक के लिए तुम धर्मराज के लोक में निवास करोगे। वहाँ मेरी आज्ञा से तुम्हारी अचल स्थिति होगी। तुम्हारे द्वारा क्षत्रियों का धर्म पालन किया जाना चाहिए। हे पुत्र ऐसा वरदान देकर ब्रह्मदेव अन्तर्धान हो "संसार में और भी प्रजाओं की उत्पत्ति करो। !

गए।

पुलस्त्य उवाच

चित्रगुप्तान्वये जाताः शृणु तान् कथयामि ते।

श्रीमद्रा नागरा गौराः श्रीवत्साश्चैव माथुराः॥

अहिफणाः सौरसेनाः शैवसेनास्तथैव च।

वर्णावर्णद्वयञ्चैव अम्बष्ठाद्याश्च सत्तम॥

शृणु तेषाञ्च कर्माणि कुरुवंशविवर्द्धन।

पुत्रान् वै स्थापयामास चित्रगुप्तो महीतले॥ धर्माधर्मविवेकज्ञश्चित्रगुप्तो महामतिः।

भूस्थानं बोधयामास सर्वसाधनमुत्तमम्॥

पुलस्त्य बोले चित्रगुप्त के जो वंशज हुए -, उनके नाम इस प्रकार हैं श्रीमद्र -, नागर, गौर, श्रीवत्स (श्रीवास्तव), माथुर, अहिफण, सौरसेना, शैवसेना भी हैं। हे (वर्णसंकर) भी है और अम्बष्ठ आदि अवर्ण (शुद्ध) आदि। इनमें वर्ण (सेन)कुरुवंश के वर्द्धक भीष्म अब इनके कर्मों को सुनो। चित्रगुप्त ने अपने पुत्रों को पृथ्वी पर स्थापित किया और धर्म तथा अधर्म के विवेक से ! - युक्त महामति चित्रगुप्त ने इन्हें सभी संसाधनों से युक्त उत्तम निवासस्थान देकर कहा

पूजनं देवतानाञ्च पितृणां यज्ञसाधनम्।

वर्णानां ब्राह्मणानाञ्च सर्वदातिथिसेवनम्॥

प्रजाभ्यः करमादाय धर्माधर्मविलोकनम्।

कर्तव्यं हि प्रयत्नेन पुत्राः स्वर्गस्य काम्यया॥

या माया प्रकृतिः शक्तिश्चण्डी चण्डप्रमर्द्दिनी।

तस्यास्तु पूजनं कार्यं सिद्धिं प्राप्य दिवं गताः॥

स्वर्गाधिकारमासाद्य यतो यज्ञभुजः सदा।

भवद्भिः सा सदा पूज्या ध्यातव्या सफलादिभिः॥

भवन्तं सिद्धिदा नित्यं पुत्रदा सा तु चण्डिका।

तन्त्रोक्ता न सुरा पेया या न पेया द्विजातिभिः॥

वैष्णवं धर्ममाश्रित्य मद्वाक्यं प्रतिपालय।

कर्तव्यं हि प्रयत्नेन लोकद्वयहिताय वै॥

अनुशिष्य सुतानेवं चित्रगुप्तो दिवं ययौ।

धर्मराजस्याधिकारी चित्रगुप्तो बभूव ह॥

"हे पुत्रों देवताओं और पितरों का पूजन करना। यज्ञ आदि करना !, ब्राह्मणों और अतिथियों की सेवा करना। स्वर्ग की कामना से धर्म और अधर्म का निरीक्षण करते हुए प्रजा से कर संग्रह करना। चण्डासुर को मारने (टैक्स)वाली चण्डी देवी, जो माया और प्रकृति हैं, उनकी फल आदि से पूजा करते रहना, जिससे प्रसन्न होकर वे तुम्हें कार्यों में सफलता, पुत्र और मरने के बाद स्वर्ग आदि दिव्य लोक प्रदान करेंगी। तन्त्र में जो मदिरा द्विजातियों के लिए पीने नहीं कही गयी है, उसका पान तुम भी मत मरना। विष्णु भगवान् के द्वारा वर्णित सात्विक वैष्णवाचार का आश्रय लेकर लोक और परलोक के हित की कामना से मेरे वचनों का पालन करो", इस प्रकार से अपने पुत्रों को आदेश देकर भगवान् चित्रगुप्त दिव्यमार्ग से यमराज के यहाँ जाकर उनके अधिकारी बन गए।

पद्मपुराण के पातालखण्ड में चित्रगुप्त के दो स्वरूप बताए गए हैं। चित्र और विचित्र। ये दोनों ब्रह्मदेव के पास जाकर अपना परिचय और वृत्तान्त पूछते हैं, तब ब्रह्मदेव कहते हैं कि प्रथम कल्प के प्रथम सत्ययुग में एक उत्तम ब्राह्मण के यहाँ

तुमने बहुत सेवा की थी, जिससे तुम्हें स्वर्ग मिला। फिर स्वर्गभोग करके जब ये पुनः मनुष्य बने तो इन्होंने फिर ब्राह्मणों की बड़ी सेवा की। इस निष्ठा से भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वर्तमान कल्प में इन्हें ब्रह्मदेव के शरीर से उत्पन्न करके यमराज के यहाँ दण्डधर्माधिकारी बना दिया। राजनीति में निपुण, दुष्टों को दण्ड देने वाले इन यथार्थवादी कर्मलेखक चित्र और विचित्र से कायस्थों की इक्कीस जातियां निकली हैं। ये सभी कायस्थों के पूर्वज हैं -

धर्मराजस्य सचिवौ दत्तावस्य तु वेधसा।
असतां दण्डनेतारौ नृपनीतिविचक्षणौ॥
यथार्थवादिनौ स्यातां शान्तिकर्मणि तावुभौ।
कायस्थसंज्ञया ख्यातौ सर्वकायस्थपूर्वजौ॥

आगे कहते हैं -

हरेरनुग्रहोऽप्यास्ते तयोश्चित्रविचित्रयोः।
एकविंशतिभेदेन याभ्यां कायस्थजातयः॥

इनके पूर्वजन्म की कथा मैंने संक्षेप में ही बता दी है। विस्तारभय से सभी मूल श्लोक मैंने नहीं दिया है। इनमें चित्र के तीन सन्तान हुईं, अथवा यूँ कहें कि चित्र ने अपनी पतिव्रता पत्नी सुभामा के माध्यम से अपने तीन स्वरूप बनाए जिनके नाम मैं बता चुका हूँ। विचित्र को अपनी पतिव्रता पत्नी भामिनी से पांच पुत्र हुए कलीर -, सुसम, सूक्ष्म, सङ्गवान् और कर्मक। ये सब बड़े पराक्रमी, धर्मात्मा और पितृभक्त थे। कश्यप ऋषि ने इन सबके वैदिक नामकरण आदि संस्कार किए, इन्हें पढ़ाया लिखाया भी इसीलिए कायस्थों के मुख्य गोत्र कश्यप के ही नाम से हैं -

विचित्रस्य सुताः पञ्च सम्बभूवन् महाशयाः।
कलीरः सुसमः सूक्ष्मः सङ्गवान् कर्मकस्त्वमी॥
भामिनीकुक्षिजास्तावच्छार्दूलगुणशालिनः।
तेषान्तु कल्पयामास कश्यपो जातकर्म वै॥
तदाचरति तत्पूर्वं नामगर्भादिवैदिकम्।
तयोः कुलपतिस्तस्मात्तावत् कश्यपसम्मतः॥
व्यातेने सकलाभीष्टमाशीः शतसमुच्चयैः।
एतावेते च सर्वे स्युर्गोत्रिणः कश्यपाभिधाः॥

चारों वर्णों के धर्म का उपदेश करने के बाद ब्रह्मदेव ने चित्र और विचित्र को कहा है -

अनेकव्यवहारज्ञः क्षत्रियान्वयजश्च सः।
तेषामुत्तमतां यायात् कायस्थोऽक्षरजीवकः॥
भवन्तौ क्षत्रवर्णस्थौ द्विजन्मानौ महाशयौ।
कृतोपवीतिनौ स्यातां वेदशास्त्राधिकारिणौ॥ पूर्वपुण्यबलोत्कर्षसाध्यसाधनभाविनौ।
सर्वज्ञकल्पौ भूयातां भगवद्गतमानसौ॥

इस प्रकार सबों के व्यवहार को जानने वाले आप दोनों क्षत्रियवर्ण के अन्तर्गत श्रेष्ठता को प्राप्त करेंगे। कायस्थ अक्षरजीवी वाले होंगे। आप दोनों महाशय द्विजाति के अन्तर्गत क्षत्रिय होंगे तथा यज्ञोपवीत से सम्पन्न होकर (लेखन की आजीविका) वेदादि शास्त्रों के अधिकारी होंगे। हे चित्र और विचित्र पूर्वजन्म के महान् पुण्यबल से आप भगवान् में चित्त को लगाकर ! सर्वज्ञ हो जाएंगे।

इन चित्र और विचित्र, किंवा एकतन्त्र से भगवान् चित्रगुप्त का क्या कर्म है ? पद्मपुराण के पातालखण्ड में कहते हैं -

सूत उवाच
अस्मिन् जगति दुःखानि दुर्दान्ता एव भुञ्जते।
तस्माद्दुर्नयकर्त्तारो निरयेष्वधिवासिनः॥
दुर्नयं सुनयं वापि सर्वेषां नयवर्त्तिनाम्।
अन्यायिनामपि तथा लिखतः कर्मसूत्रिणाम्॥
एतल्लेखनमध्यस्थं कर्मसूत्रं यथातथम्।
न न्यूनमधिकं वापि देहारम्भस्य कर्म यत्॥
जन्मानन्त्यभवं कर्म जीवानां भावितावुभौ।
उपयोगं विनाप्येतौ लेखयामासतुः स्वतः॥
विलोक्य प्राणिनामायुः सम्पूर्णं कर्म वा यथा।
समानपतितानेव नापराविति निर्णयः॥

श्रीसूतजी कहते हैं संसार में पापियों के द्वारा दुःख ही दुःख भोगने में आता है। ये सब पापी नरक भेजे जाते हैं। - प्ाणियों के अच्छे और बुरे कर्म को चित्र एवं विचित्र बिना कुछ जोड़े या घटाए, यथार्थतः लिखते रहते हैं। शरीर के जन्म लेने से मरने तक उस जीव ने जो किया है, उसे ये जीव के सम्पूर्ण जीवन का अवलोकन करके, बिना भेदभाव के स्वतः लिखते रहते हैं।

कायस्थों के लिए व्यापार भी बताया गया है व्यापारोऽपि प्रकर्त्तव्यः कालिकापि हि सेव्यते। कालिकापूजन भी बताया गया है - दवात की देवी कालिका ही हैं। राजा सौदास को अपने पाप के कारण नरक की प्राप्ति-क्योंकि स्याही, फिर चित्रगुप्तपूजन के प्रभाव से उनका उद्धार आदि सब माहात्म्य व्रतकथाओं में विस्तार से मिलते ही रहते हैं, अतः मैं उनका उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। पूजाविधि और व्रतकथा प्रचलित विषय है। अब प्रश्न उठता है कि क्या कायस्थों को स्वयं को क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत मानना चाहिए ? उत्तर है नहीं। -

अब आपको सन्देह हुआ होगा कि अभी तो मैंने स्वयं ब्रह्मदेव के वाक्य से कायस्थों को क्षत्रिय सिद्ध किया, फिर क्या समस्या आ गयी ? मैं समझाता हूँ। आपको आचारनिर्णयतन्त्र का प्रमाण स्मरण होगा, जहाँ बगलामुखी की उपासना के फलस्वरूप राज्यभोग के अनन्तर भगवान् सर्व ने तीनों लोकों पर शासन करने के निमित्त स्वर्गलोक में चित्रगुप्त, मर्त्यलोक में चित्रसेन और पाताललोक में चित्राङ्गद का स्वरूप बनाया था, उस प्रकरण पर वापस आते हैं। महाराज चित्रसेन के बहुत से पुत्र हुए जिसमें बारह प्रधान बताता हूँ -

वसुर्घोषो गुहो मित्रो दत्तो नागश्च नाथकः।
दासो देवस्तथा सेनः पालितः सिंह एव च॥
एते द्वादशनामानः प्रसिद्धाः शुद्धवंशजाः॥

वसु (बासु), घोष (बोस), गुह, मित्र, दत्त, नाग, नाथ, दास, देव, सेन, पालित (सिन्हा) और सिंह (पाल), ये चित्रसेन के बारह प्रधान शुद्धवंशीय प्रसिद्ध पुत्र हुए। चित्रसेन के ही वंश में आगे महाराज चन्द्रसेन हुए। जब भगवान् परशुराम ने माहिष्मती के राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का संहार किया और अपने पिता की हत्या के प्रतिशोध हेतु समस्त दुष्ट क्षत्रियों के वध का सङ्कल्प किया तो भयभीत होकर सभी क्षत्रिय इधर उधर भागने लगे। इसमें राजा चन्द्रसेन की गर्भवती पत्नी महामुनि दाल्भ्य के आश्रम में शरण हेतु गयी। तब परशुरामजी भी पीछे पीछे गए।

दाल्भ्य ऋषि ने परशुरामजी का सत्कार करके मध्याह्न भोजन कराया और उनके आगमन का कारण पूछा तो परशुरामजी

ने कहा कि यहाँ महात्मा राजर्षि चन्द्रसेन की गर्भवती पत्नी आयी है, उसके गर्भ को नष्ट करने आया हूँ। दाल्भ्य ने कहा कि मैं कुछ मांगूंगा तो आप देंगे ? परशुरामजी ने स्वीकृति दे दी तो दाल्भ्य ने उस बच्चे को ही मांग लिया। परशुरामजी ने कहा कि ठीक है, अब जिस बच्चे को मैं मारने आया था, उसे ही आपने मांग लिया है तो मैं उसे नहीं मारूंगा किन्तु फिर मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा ? दाल्भ्य ऋषि ने कहा कि इस बालक को मैं क्षत्रियत्व से बहिष्कृत करके अपने गोत्र में स्थान दूंगा और चित्रगुप्त की व्यवस्था के अन्तर्गत वैश्यवर्ण में इसकी प्रतिष्ठा होगी। परशुरामजी ने कहा कि ठीक है, इस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा बच जाएगी। यह बालक माता के शरीर में स्थित हुआ ही आपके द्वारा रक्षित हुआ है तो यह और इसके वंशज अब कायस्थ कहलाएंगे जो चित्रगुप्त के अन्तर्गत होंगे। फिर वे कायस्थ धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, सदाचारी, श्रीविष्णु एवं श्रीशिव के उपासक एवं देवता, ब्राह्मण, पितर और अतिथियों की पूजा करने वाले हुए। इस कथा के कुछ आधारभूत श्लोक स्कन्दपुराण के रेणुकामाहात्म्य में देखें -

एवं हत्वार्जुनं रामः सन्धाय निशितान् शरान्।
एक एव ययौ हन्तुं सर्वानेवातुरान् नृपान्॥
केचिद्गहनमाश्रित्य केचित् पातालमाविशन्।
सगर्भा चन्द्रसेनस्य भार्य्या दाल्भ्याश्रमं ययौ॥
ततो रामः समायातो दाल्भ्याश्रममनुत्तमम्।
पूजितो मुनिना सद्यः पाद्यार्घ्याचमनादिभिः॥
ददौ मध्याह्नसमये तस्मै भोजनमादरात्।
रामस्तु याचयामास हृदिस्थं स्वमनोरथम्॥
याचयामास रामाच्च कामं दाल्भ्यो महामुनिः।
ततस्तौ परमप्रीतौ भोजनं चक्रतुर्मुदा॥
भोजनानन्तरं दाल्भ्यः पप्रच्छ भार्गवं प्रति।
यत्त्वया प्रार्थितं देव तत् त्वं शंसितुमर्हसि॥
राम उवाच
तवाश्रमे महाभाग सगर्भा स्त्री समागता।
चन्द्रसेनस्य राजर्षेः क्षत्रियस्य महात्मनः॥
तन्मे त्वं प्रार्थितं देहि हिंसेयं तां महामुने।
ततो दाल्भ्यः प्रत्युवाच ददामि तव वाञ्छितम्॥
दाल्भ्य उवाच
स्त्रियो गर्भममुं बालं तन्मे त्वं दातुमर्हसि।
ततो रामोऽब्रवीद्दाल्भ्यं यदर्थमहमागतः॥
क्षत्रियान्तकरश्चाहं तत् त्वं याचितवानसि।
प्रार्थितश्च त्वया विप्र कायस्थो गर्भ उत्तमः॥
तस्मात्कायस्थ इत्याख्या भविष्यति शिशोः शुभाः।
एवं रामो महाबाहुर्हित्वा तं गर्भमुत्तमम्॥
निर्जगामाश्रमात्तस्मात् क्षत्रियान्तकरः प्रभुः।
कायस्थ एष उत्पन्नः क्षत्रिय्यां क्षत्रियात्ततः॥
रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षत्रधर्माद्वहिष्कृतः।
कायस्थधर्मोऽस्मै दत्तश्चित्रगुप्तश्च यः स्मृतः॥
तद्गोत्रजाश्च कायस्था दाल्भ्यगोत्रास्ततोऽभवन्।
दाल्भ्योपदेशतस्ते वै धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः॥

सदाचारपरा नित्यं रता हरिहरार्चने।
देवविप्रपितृणाञ्च अतिथीनाञ्च पूजकाः॥

कायस्थ मसीश (जो बाद में चित्रगुप्त कहलाए), उनका बड़ा विस्तृत समाधान श्रीशिवजी ने आचारनिर्णयतन्त्र के ३७वें पटल में वर्णन किया है। पूरे प्रसङ्ग के सभी श्लोकों को तो लिखना सम्भव नहीं है क्योंकि लेख बहुत बड़ा हो जाएगा किन्तु प्रधान घटनाक्रम और श्लोकों को लिख रहा हूँ।

ब्रह्मदेव के चरणों से उत्पन्न होकर और दिव्य लेखनी तथा स्याही के स्वामी होकर भी मसीशदेव वैदिक लेखन नहीं कर पाते थे तो उन्हें तपस्या करने की इच्छा हुई किन्तु क्या और कैसे करूँ, इसमें कोई निर्णय न ले सकने के कारण वे तपस्वी ब्राह्मणों के पास जाकर सेवा की इच्छा प्रकट करने लगे। कोई ब्राह्मण स्नान, तपस्या आदि करने जाते तो बड़ी भक्ति से हाथ जोडकर उनके पास जाकर भूखे प्यासे खड़े रहते और कहते कि आपके आश्रम तक आसन और सामग्रियों को मैं मस्तक पर ढोकर ले जाऊंगा। किन्तु मसीश देव को कोई ब्राह्मण अपना आसन आदि छूने नहीं देते क्योंकि क्षत्रिय और वैश्यवर्ण के समान होकर भी उन्होंने तबतक द्विजातिविहित वेदोक्त उपनयन आदि की दीक्षा नहीं ली थी। श्लोक देखें -

जन्मावधि द्विजार्चायां मतिरेव निरन्तरम्।
कुशासनादि सकलं गृहीत्वा मस्तकोपरि॥
अनुगच्छामि सततमिति चिन्तामनाः सदा।
शठत्वाच्चतुरत्वाच्च विप्रसेवामनुक्षणम्॥
वाञ्छत्येव मसीशः स सदोद्वेगीतिमावहन्।
ब्राह्मणं हीश्वरं ज्ञात्वा भक्त्या स्तौति पुटाञ्जलिः॥
यं यं गच्छति विप्रश्च मसीशश्चानुगच्छति।
नद्यादौ गत्वा चेद्विप्रः स्नात्वा कुर्यात्तपोऽपि च॥
यावत्तावच्च तिष्ठेत् स क्षुधया पीडितोऽपि च।
तथापि नासनं लाति शिरे धर्तुं द्विजोऽपि च॥
मसीशायादीक्षिताय क्षत्रवैश्योपमाय च।
अशूद्रायेति वोढुं न ददात्येवासनादिकम्॥

फिर शिवजी ने बताया कि मसीशदेव ने आलस्य के कारण अपना उपनयन आदि कराकर वेदों का अधिकार प्राप्त नहीं किया था, फलतः दिव्य कलम और स्याही से युक्त होने के बाद भी वे लौकिक लेखन तो कर लेते थे किन्तु वैदिक लेखन नहीं कर पाते थे। सत्ययुग बीत गया, त्रेतायुग और द्वापरयुग भी बीत गया किन्तु वे मसीशदेव ब्राह्मणों की सेवा करने का प्रयास नहीं छोड़ रहे थे। बाद में ब्राह्मणों ने उनकी निष्ठा देखकर कृपा करके उन्हें बगलामुखी महाविद्या का मन्त्र प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप उनमें संस्कार का जागरण हुआ और वे आसन आदि मस्तक पर ढोने लगे। इस प्रकार कलियुग में कायस्थ ब्राह्मणों के मार्गदर्शन में चलने लगे। श्लोक देखें -

गृहीतवान्न तत् किञ्चिन्मसीशोऽलसतः शिवे।
अतो यज्ञोपवीती न ते हि यज्ञोपवीतिनः॥
एते स्युर्वैदिकाचारा मसीशो हि स्वभावतः।
मस्या सह तु लेखन्या सर्वं लेखितुमीश्वरः॥
लिखितुं नैव शक्नोति वैदिकं किञ्चितं किल।
अतो हृदि विचार्याथ खेदेन विप्रमीश्वरम्॥
ज्ञात्वा भक्त्यानुगच्छेद्धि यत्र याति धरासुरः।

कृतत्रेताद्वापरेषु गतेष्वपि मसीशकः॥
तदपि त्यक्तवान्नैव दृढां भक्तिं द्विजेषु च।
ततो हि कृपया विप्रः कायस्थमनुगृह्य हि॥
सालसं प्राददद्विद्यां बगलेति तव प्रिये॥
यतो दीक्षामात्रमेव पवित्रः कार्यसिद्धिता।
ततः कुशासनादींश्च वोढुं प्रादात् शिरोपरि।
एवं प्रकारेण कालि विप्राणामनुगाः कलौ॥

इस प्रकार सबसे प्रथम कलियुग में मसीशदेव ब्राह्मणों की सेवा करते हुए बगलामुखी की तपस्या में लीन रहे। उसी काल में एक सुयज्ञ नाम के राजा हुए जिन्होंने गोमेध यज्ञ करने हेतु चार योजन के क्षेत्र में रहने वाले सभी ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया। इसमें एक समस्या यह हो गयी कि कार्यभार के कारण एक सुतपा नाम के श्रेष्ठ ब्राह्मण को वे निमन्त्रण भेजना भूल गए। सुतपा की पत्नी ने यह जानकर कहा कि लगता है, राजा ने आपको मूर्ख ब्राह्मण समझा होगा, इसीलिए निमन्त्रण नहीं भेजा। आप तो बस मेरे सामने ही पण्डित बने फिरें, बाहर आपकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। सबको बुलाया, मात्र मुझे नहीं, यह सोचकर सुतपा को खिन्नता तो हुई किन्तु उन्होंने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा कि देवि ब्राह् !मण को सन्तोषी होना चाहिए, अधिक की कामना नहीं करनी चाहिए। हमें जीवन चलाने के लिए जितने की आवश्यकता है, उतने का प्रबन्ध तो है ही न। विद्वान् होकर भी सदाचारी न हो तो कैसा विद्वान् ? उससे श्रेष्ठ तो वह मूर्ख है जो अधिक नहीं पढ़ा किन्तु कम से कम सन्ध्याकर्म आदि सदाचार तो करता है।

कलिप्रथमतो राजा क्षत्रियाणां महाबलः।
सुयज्ञनामा गोमेधमखमारब्धवान् प्रिये॥
आहूतवांश्च सर्वान् स चतुर्योजनमध्यतः।
ब्राह्मणान् भ्रान्तिवशतः केवलं सुतपसं विना॥
प्राप्ताह्वानद्विजान् यातो दृष्ट्वा सुतपसः प्रिया।
धवं तिरस्कृतवती यथैतच्छृणु कालिके॥
हे स्वामिंस्त्वां नृपो मूर्खं मत्वा नाहूतवान् मखे।
केवलं तव पाण्डित्यं मत्समीपे न शोभते॥
सुतपा उवाच
कान्ते ब्रवीमि विप्राणां यत्कर्तव्यं शृणुष्व तत्।
यात्रामात्रं वहन्नन्नं काङ्क्षितव्यं न चाधिकम्॥
विद्वांश्चेद्विद्या दातव्या क्वापि नानार्जवं चरेत्।
मूर्खश्चेत्केवला सन्ध्या सदोपास्या प्रयत्नतः॥

इसपर उनकी पत्नी ने कहा कि अच्छी बात है। आपकी यह महानता आप ही अपने पास रखें। आप श्रेष्ठ ब्राह्मण बने रहें, मैं आपके सामने ही मरने जा रही हूँ। मेरे ये कांसे के कंगन ही मेरे अन्तिम साथी होंगे। इस गृहक्लेश से व्यथित होकर सुतपा ने कहा कि अभी तुम्हारे मन में धन की तीव्र इच्छा है इसीलिए मेरी बात नहीं समझ रही हो और ऐसा कहकर बिना निमन्त्रण के ही यज्ञ कर रहे राजा सुयज्ञ के पास गए और बोले कि बिना बुलाए कहीं जाना ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए मरण के समान है, फिर भी मैं तुम्हारी सभा में आया हूँ। तुम मेरी बात सुनो, मेरी अवहेलना करने के कारण तुम्हारा यह यज्ञ श्रीहीन और भ्रष्ट हो जाए।

ब्राह्मण्युवाच
सुमानुषत्वं ते कान्त सुविप्रत्वं धव त्वयि।

तिष्ठत्वेव चिरं विप्र तेऽन्तौ मे मरणं शिवम्॥
कांस्यकङ्कणवलयौ सङ्गिनौ मे मृतावधि।
सुतपा उवाच
प्रिये ते ह्यधुना तीव्रं धनान्तःकरणं सदा।
विना निमन्त्रितेनापि गत्वा चानीयते धनम्॥
इत्युक्त्वा सुतपा कान्तां गत्वा राजसभां प्रिये।
रान्तं सुयज्ञं वरणं प्रोवाच नृपतिं द्विजः॥
रे सुयज्ञ विनाह्वानैरगच्छं ते सभामहम्।
विप्राणां मरणं राजन् क्षत्रियाणां तथैव च॥
कृतं तदपि नाहं रे त्वया दृष्टः स्वचक्षुषा।
भ्रष्टो भवतु ते यज्ञः श्रीश्च यातु स्थलान्तरम्॥

ऐसा शाप देकर सुतपा वहाँ से जाने लगे तो राजा सुयज्ञ भयभीत हो गए। उनका पूरा राज्य, धन, खजाना, सब नष्ट हो गया। उन्हें समझ ही नहीं आया कि क्या हुआ है। अङ्गिरा आदि यज्ञकर्ता महर्षि भी जाने लगे तो राजा सुयज्ञ अत्यन्त विनम्रता से महर्षि सुतपा के पास जाकर बोले कि मैंने जानबूझकर कोई गलती नहीं की है, मुझसे असावधानी में यह अपराध हो गया है कि आपको निमन्त्रण नहीं प्राप्त हो सका। फिर अङ्गिरा आदि ने भी सुतपा मुनि से क्षमा याचना की। राजा सुयज्ञ बोले कि ब्राह्मण तो पृथ्वी के चलते फिरते देवता हैं, साक्षात् करुणा और दया की मूर्ति होते है, आप मेरे इस अज्ञात पाप को क्षमा करें। इस बात पर सुतपा ने कहा कि कोई बात नहीं, राजन् आपका कल्याण हो। आप अपने यज्ञ को पूर्ण करें। !

फिर राजा सुयज्ञ ने भक्तियुक्त चित्त से अपनी राजसभा में सुतपा का विधिपूर्वक सम्मान करके उन्हें दस हज़ार चांदी के सिक्के निवेदित किए। फिर राजा सुयज्ञ ने कहा कि एक ब्राह्मण के अपमान से इतना अनर्थ हो गया। महाराज एक प्रश्न ! का उत्तर दें। अभी तो घोर कलियुग आने वाला है। उसमें ब्राह्मणों का तो बहुत अपमान होगा। उस समय क्या कोई ब्राह्मणों का सम्मान करेगा ? तब सुतपा ने कहा ये जो तुम्हारे सामने ब्राह्मणों का आसन अपने मस्तक पर ! सुयज्ञ" - लेकर खड़े हैं, इन्हें जानते हो ? ये साक्षात् ब्रह्माजी के शरीराङ्ग चरणों से उत्पन्न मसीशदेव है। इनकी विनम्रता देखो। इनके ही वंशज कायस्थ होंगे जो ब्राह्मणों का ईश्वर के समान सम्मान करेंगे। महाविद्याओं की उपासना करने वाले वे कायस्थ गुण में क्षत्रिय के समान होंगे। पहले क्षत्रियों के अभाव में और फिर वैश्यों के अभाव में ये कायस्थ ही कलियुग में ब्राह्मणों के सम्मान की रक्षा करने वाले होंगे। सुयज्ञ इन मसीश कायस्थों की बुद्धि कल्याणकारिणी होगी। ये ब्राह्मणों के प्रिय ! भक्त होकर महाविद्या की उपासना करते हुए उनकी सेवा और वन्दना करेंगे।

सुतपा उवाच
हे सुयज्ञ नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणातिप्रियो नृप।
पश्यैतान् विप्रभृत्यांस्त्वमासनादिशिरोधृतान्॥
एतद्घोरकलावेते भविष्यन्ति द्विजार्चकाः।
जात्या मसीशाः कायस्था ब्राह्मणेश्वरमानसाः॥
महाविद्योपासकाश्च गुणतः क्षत्रियोपमाः।
कलौ हि क्षत्रियाभावात् वैश्याभावाच्च सुव्रत॥
एते भक्त्या भविष्यन्ति विप्रामानसहिष्णवः।
विप्रप्रिया विप्रभक्ता विप्रमानप्रदा यतः॥
महाविद्याप्तितश्चैते क्षत्रकर्मकृतः कलौ।
मस्या एवेश इत्यस्मात् मसीशोऽसौ निगद्यते॥
ब्रह्मणो विप्रमूर्तेस्तु पादांशे सम्भवन्ति तत्।

कायस्था इति संज्ञाः स्युः सुयज्ञैषां शिवा मतिः॥

तब सुयज्ञ ने कहा कि मेरे पिताजी ने मुझे बताया था कि परब्रह्म का वास्तविक ज्ञान ब्राह्मण को ही हो सकता है, अन्य जातियों को नहीं। ब्राह्मण तो बिना स्वार्थ के ही सबों के कल्याण की कामना करता हुआ आशीर्वाद देता है। जो ब्राह्मणों की अवहेलना करता है, उनकी बात नहीं मानता, ऐसा व्यक्ति गुरु की अवहेलना का पाप भोगता है। जो ब्राह्मण का सम्मान नहीं करता है, वह व्यक्ति सन्दिग्ध जाति का है। ब्राह्मण संसार का निर्माण और विनाश दोनों ही कर सकते हैं। ब्राह्मण कदाचित् रुष्ट होकर डांटे भी तो उसे अपना कल्याण समझकर सहन करना चाहिए। एक सच्चे ब्राह्मण का लक्षण यही है कि वह लोभरहित होता है। श्रद्धा से लोग उसे जो दे दें, स्वीकार कर लेता है। सच्चा ब्राह्मण वही है जो किसी से कपट नहीं करता है और बिना अपराध के शाप नहीं देता, ब्राह्मण सदैव दयालु होते हैं, यह सब मेरे पिताजी ने बताया था। हे सुतपा मुनि आपका मैं अपराधी हूँ !, आपको जो उचित लगे, आप वह मेरे साथ करें। इसके बाद प्रसन्न मन वाले सुतपा मुनि ने राजा सुयज्ञ को कोई वरदान मांगने कहा।

सुयज्ञोवाच

हे नाथ सुतपो विप्र श्रुतं यन्मेऽङ्गकृन्मुखात्।
कृपया शृणु तत्सर्वं ते जातेर्महिमानमु॥
ब्राह्मणो ब्रह्म जानाति नान्यजातिरिति श्रुतिः।
ब्रह्मज्ञानी सदा विप्रो न चेद्ब्राह्मणसंज्ञकः॥
विना प्रयुक्तिं यो विप्र उपकारी स्वयं भवेत्।
आशीः करोति ब्रूते च क्षत्रादीनां शिवं वचः॥
स एव साक्षाद्ब्रह्मेति विप्राणां जातिलक्षणम्।
ब्राह्मणाज्ञावचो ये न गृह्णन्ति पालयन्ति च॥
गुर्वाज्ञालङ्घनं पापं स्पृशेत्तेषां शरीरतः।
पित्रेति सकलं चोक्तं ते च सन्दिग्धजातयः॥
वशीकारादि सकलं सृष्टिस्थितिलयञ्च यत्।
शक्नुवन्ति हि कर्तुं ते विप्राः पित्रेति चोक्तमु॥
विनायासैर्मुदा यो यद्विप्राय शक्तितो ददत्।
मुदा तदेव गृह्णाति विप्राणामिति लक्षणम्॥
केषामपि न कापट्यं कुरुते ब्राह्मणः क्वचित्।
विनापराधैर्न शपेदिति तज्जातिलक्षणम्॥
××××××××××××××××××
दयालुश्च सदा विप्र इति पुत्र हृदि स्मरन्।
भीत्या भक्त्या सदा पूज्यः पितेति ब्रूतवांश्च मे॥
××××××××××××××××××
शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि सावधानं समाचार।
घ्नन्तं बहुशपन्तं वा नैव द्रुह्यति भूसुरम्॥
सुतपो नाथ मे पित्रा यद्यदुक्तं तदुक्तवान्।
त्वञ्चापि ब्राह्मण ब्रह्म यथारुचि तथा कुरु॥
श्रुत्वैतत् सुतपा विप्र उवाच परमादरम्।
राजन् वरं वृणु वृणु यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥

राजा सुयज्ञ ने भविष्य को ध्यान में रखकर कहा कि आगे जब परशुरामजी क्षत्रियों का विनाश करेंगे तो वे मुझे भी मारने

आएंगे। उस समय मेरी रक्षा हो जाए, ऐसा आप मुझे वरदान दें। सुतपा ने कहा कि चिन्ता मत करो। विन्ध्याचल से नैर्ऋत्य दिशा में स्वर्णदा नदी के मध्य बारह कोश विस्तार का एक टापू है। अपने यज्ञ को पूर्ण करके तुम वहीं चले जाना, वहाँ सुरक्षित रहोगे। भविष्य में जब परशुरामजी तुम्हें मारने आएंगे तो तुम बचे रहोगे। यदि फिर भी वे तुमपर आक्रमण करते हैं तो वे काणे हो जाएंगे। परशुरामजी के शान्त होने पर अगले सत्ययुग में तुम पुनः जम्बूद्वीप के राजा बन जाओगे, तब तक बीजरूप से वहीं निवास करो। मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ, कोई और भी इच्छा हो तो वरदान मांग लो।

सुतपा उवाच

यज्ञं समाप्य सुखतः प्रगच्छेर्विन्ध्यनैर्ऋतिम्।
तत्र वै स्वर्णदानद्या मध्ये द्वीपोऽस्ति सुन्दरः॥
द्वादशक्रोशमानी हि तद्गत्वा वसतिं कुरु।
यदा परशुरामस्ते कच्चिच्छेत्ता भविष्यति॥
भविष्यति च काणः स नय ते वाञ्छितं वरम्।
ततः पुनः कृते राजन् जम्बूद्वीपेश्वरो भवान्॥
भविष्यतीति त्वं बीजरूपेण तिष्ठ तत्र हि।
वरं ते वाञ्छितं गृहण तुष्टोऽहं भक्तितस्तव॥

इसके बाद राजा सुयज्ञ ने मात्र उत्तम बुद्धि और विप्रभक्ति का वरदान मांगा और यज्ञ को पूर्ण करके बताए गए सुरक्षित स्थान पर चले गए। वहीं पर फिर मसीशदेव ने पहले बतायी गयी कथा के अनुसार उनका राज्यभार सम्भाला और बाद में स्वयं को स्वर्गलोक के लिए चित्रगुप्त, मर्त्यलोक के लिए चित्रसेन और पाताललोक के लिए चित्राङ्गद, इन तीन रूपों में विभाजित कर लिया। इसमें बगलामुखी का जप करके चित्रगुप्त के स्वर्ग चले जाने और चित्रसेन के पुत्रप्राप्ति के निमित्त बगलामुखी की तपस्या में लग जाने के कारण पृथ्वी का शासन चित्राङ्गद करने लगे। उन्होंने भी बगलामुखी का मन्त्र ग्रहण करके जप करना प्रारम्भ किया किन्तु उनके जप का उद्देश्य ब्राहमण बनना था।

उन्होंने दूसरे ब्राहमणों का सत्कार करना छोड़ दिया, यहाँ तक कि सम्मान से देखना भी बन्द कर दिया, गुरु की पूजा भी छोड़ दी। पांच वर्ष तक मात्र शाम को फल खाकर वे जप करते रहे तो इस बात से ब्राहमणों को बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने चित्राङ्गद को पाताल जाने का शाप दे दिया। उन्होंने कहा कि तुम अज्ञान के कारण उन्मत्त व्यक्ति के समान यह क्या अधर्म कर रहे हो ? तुम शीघ्र ही पाताल चले जाओ और वहीं बैठकर बगलामुखी को जपते रहना। अपने अपराध का बोध होने पर चित्राङ्गद को बड़ी ग्लानि हुई और उन्होंने अपना दण्ड स्वीकार करके क्षमा मांगी। तब ब्राहमणों ने कहा कि वत्स ! तुम चिन्ता मत करो। तपस्या के फलस्वरूप वरदान मिलने पर देवत्त्व की प्राप्ति तो हो सकती है किन्तु ब्राहमणत्व की नहीं। अभी दस हज़ार वर्ष तक तुम पाताल में नागों के राजा बनकर रहो। तुम्हारा जप निष्फल नहीं होगा, उसके बाद जप के प्रभाव से तुम तीनों लोकों के इन्द्रतुल्य शासक बन जाओगे और फिर अन्त में तुम्हारा मोक्ष भी हो जाएगा। हम सदैव तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं।

बगलेति मनुं प्राप्य विप्रोऽस्मि इति वाञ्छया।
तपश्चकार पञ्चाब्दं नान्नं किञ्चिद्गृहीतवान्॥
फलमूलादिकं किञ्चित् सायमत्ति यथा मिलेत्।
विहाय विप्रस्य गुरोरपि पूजाञ्च पार्वति॥
जपेन्नित्यं हि बगलामन्यविप्रञ्च नेक्षयन्।
ज्ञात्वेति ब्राहमणाः सर्वे ऊचुश्चित्राङ्गदं क्रुधा॥
×××××××××××××××××
रे चित्राङ्गद अज्ञस्त्वं वत्स विप्रत्वमिच्छसि । कदाप्युपानन्मस्तस्थो न !ैवेति न हि बुध्यसि॥

वत्स शीघ्रमधो गच्छ चिरं कुरु तपो मुदा।
ततः श्रुत्वेति शापं स भक्त्यातिशयमानसः॥
चित्राङ्गद उवाच
हे ब्राह्मणा हे गुरवो मामेवातिनिरागसम्।
कथं शेपुर्भवन्तो हि विप्ररूपा ह ईश्वराः॥
मुखाद्वो श्रुतवान् यद्यत्क्षतिः का तत्समाचरन्।
उपास्यो यस्तद्भवितुं सर्वे ह्युद्योगिनः स्युरु॥
जानेऽहं ब्राह्मणो ब्रह्म स्वेच्छया विविधाकृतिः।
नानालीलामाचरितुं मानुषाकृतिरप्यभूत्॥
××××××××××××××××××
ब्रुवन्ति चातिमधुरं क्रन्दन्त इव ते द्विजाः।
हे चित्राङ्गद हे विद्वन् दौर्बल्यं त्यज वत्सक॥
दुश्चिन्तां कुरु मा तात भद्रं ते कथयामि ते।
जनस्तपोबलेनैव सर्वं भवितुमर्हति॥
नार्हतीशं विना तात ब्राह्मणो भवितुं किल।
इतीश्वराज्ञा वेदेऽस्ति प्रतिजानीहि तत्त्वतः॥
वरं प्राप्नोति देवत्वं ब्राह्मणत्वं कदापि न।
यथामरत्वमीशेन विना क्वापि न शासने॥
मा दुःखी त्वमधो गच्छ सुखेन बगलां जप।
कलेर्दशसहस्राणि नागलोकेश्वरो भव॥
ततस्त्रिलोकनाथस्त्वमिन्द्रतुल्यो भविष्यसि।
राज्यं भुक्त्वा ततो नैव पुनरावर्त्तनं तव॥
सदा वयं तव शिवं चिन्तयामो न भीं कुरु।
के जानन्तीदृशं त्वां हि भक्तश्रेष्ठं विवेचकम्॥
(आचारनिर्णयतन्त्र, पटल के अंश ३७ -)

भीष्म पितामह को उनके पिता महाराज शान्तनु ने इच्छामृत्यु का वरदान दे तो दिया था किन्तु बिना देवसमर्थन के यह वरदान फलीभूत नहीं होता। अतः पितामह भीष्म ने निम्न मन्त्रों से भगवान् चित्रगुप्त की आराधना की थी -

उत्पत्तौ प्रलये चैव भोग्ये दाने कृताकृते।
लेखकस्त्वं सदा श्रीमांश्चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥
श्रिया सह समुत्पन्न समुद्रमथनोद्भव।
चित्रगुप्त महाबाहो ममाद्य वरदो भव॥

इन मन्त्रों में चित्रगुप्त को समुद्रमन्थन में लक्ष्मीदेवी के साथ उत्पन्न बताया गया है। अनादिनिधना देवाः उक्ति के अनुसार देवशक्तियों का जन्म और मरण नहीं होता, वे बस समयानुसार विभिन्न निमित्तों से प्रकट होती रहती हैं, अतः यह भी सही है। इसी नियम से श्रीशिवपार्वती के विवाह में गणपतिपूजन भी हुआ था। भगवान् चित्रगुप्त ने भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान भी दिया -

चित्रगुप्तस्तु सन्तुष्टो भीष्माय च वरं ददौ।
मत्प्रसादान्महाबाहो मृत्युस्ते न भविष्यति॥

स्मरिष्यसि यदा मृत्युं तदा मृत्युर्भविष्यति।
इति तस्मै वरं दत्वा चित्रगुप्तो दिवं ययौ॥

सर्वप्रथम सर्वनामक मसीशदेव उत्पन्न हुए, जिन्होंने तीनों लोकों के लिए चित्रगुप्त, चित्रसेन और चित्राङ्गद नामक रूप बनाए। इसमें चित्रगुप्त भी चित्र और विचित्र, नामों से प्रसिद्ध हैं। बंगाल के श्रीरामानन्दशर्माकृत कुलदीपिका ग्रन्थ में बंगाल के कायस्थों को शूद्रवर्ण में गिना है क्योंकि कालान्तर में संस्कारभ्रष्ट हो जाने के कारण उनका यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन आदि कई पीढ़ियों तक बाधित रहा। मूलतः कायस्थों की गणना क्षत्रियवर्ण में थी किन्तु परशुरामजी के अवतार के बाद आपाततः इन्हें वैश्यवर्ण में अवरोहण करना पड़ा, जैसे महाराज अग्रसेन मूलतः क्षत्रिय होकर भी दयापरक भाव से वैश्यवर्ण में अवरोहण कर गए थे। जिन कायस्थों में यज्ञोपवीत और वेदाध्ययन की परम्परा अभी तक है, वे वैश्यवर्ण में हैं। जिसमें कुछ पीढ़ी पहले थी किन्तु अभी नहीं है, वे विड्बन्धु हैं, व्रात्यशोधन प्रायश्चित्त करके पुनः वैश्यवर्ण में आ सकते हैं। जिनके अज्ञात पीढियों से यज्ञोपवीत आदि लुप्त हो चुके है, ऐसे कायस्थ वेदोक्त कर्म में प्रत्यक्षतः अनधिकृत होकर शूद्रतुल्य गिने जाएंगे, यह मैं समझता हूँ।

अक्षरधाम पर्यटन स्थलों में अपने आप को भगवान् विष्णु का अवतार सिद्ध करके अपनी मूर्तियों की पूजा कराने वाला स्वामीनारायण उर्फ स्वामी सहजानन्द उर्फ नीलकंठवर्णी उर्फ घनश्याम पांडेय अपने शिष्यों को कहता था कि वही पूर्ण अवतार, प्रकट नारायण भगवान् है। लाखों लोग अन्धे होकर इसकी उपासना में लगे हुए हैं और पाखंड की एक नई और कुटिल धारा चल पड़ी है। इनलोगों ने दूसरा नाम उद्धव सम्प्रदाय भी रखा है।

इनके अनुयायी शास्त्रोक्त देवता, तीर्थ, व्रत, अनुष्ठान, वर्णाश्रम आदि को न मानकर अपनी मनमानी करते हैं। अब तो इनके अनुयायी श्रीकृष्णवल्लभाचार्य भी अपने नाम के आगे 'प्रकट भगवान्' शब्द लगाने लगे हैं। स्वयं को श्वेतायनव्यास बताते हैं। ये कहते हैं कि स्वामिनारायण घनश्याम पांडेय ही पुरुषोत्तम नारायण भगवान् है, इसके कई पुराणों एवं शास्त्र में दिए गए प्रमाण इस प्रकार है, जो इनलोगों को वेबसाइट, पुस्तकों एवं विकिपीडिया आदि में भी दिखाई पड़ते हैं -:

पाखण्डबहुलो लोके स्वामिनाम्ना हरिस्वयम्। :
पापपङ्कनिमग्नं तज्जगदुद्धारयिष्यति॥
(पद्मपुराण (

धर्मादेवात्तदामूर्तौ नरनारायणात्मना।
प्रवृत्तेऽपि कलौ ब्रह्मन् भूत्वाहं सामगो द्विजः॥
(वामन एवं स्कन्दपुराण(

दत्तात्रेयो कृतयुगे त्रेतायां रघुनन्दनः।
द्वापरे वासुदेवश्च कलौ स्वामिवृषात्मजः॥
(ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्मपुराण(

भूम्याकृतवतारोहं सर्वानेतान् जनानहम्।
प्रापयिष्यामि वैकुण्ठं सहजानन्दनामतः॥
(विष्वक्सेन संहिता (

स्वामिनारायणोस्माकमास्ते श्रीवेंकटाचले।
कदाचिद् हयमारुह्य हंस शुक्लं मनोजवम्॥
(स्कन्दपुराण(

महाधर्मात्मनो भूमौ नाम्ना पापविनाशक|:
हरिप्रसादविप्रस्य स्वामिनाम्ना हरिः स्वयम्॥
भविता तनयो विप्र सर्वावतारकारणम्॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण(

ये कहते हैं कि इन शास्त्रवाक्यों से सिद्ध होता है कि घनश्याम पांडेय साक्षात् विष्णु भगवान् ही था। किन्तु आश्चर्य से ये सभी श्लोक प्रमाण हमें उपर्युक्त ग्रन्थों की किसी प्रति में कहीं नहीं मिले। हमें क्या, किसी भी ऐसे व्यक्ति को नहीं मिले जो उसके गिरोह का सदस्य न हो। इन्होंने मात्र अपने से श्लोक बनाकर किसी ग्रन्थ के नाम से जोड़कर प्रचार कर दिया है।

मूल सनातन के अन्तर्गत शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि की मान्य परम्परा में रहते हुए शास्त्रगम्यता का प्रयास करना चाहिए। इन मिलावटी सिद्धान्त वाले लोगों से प्रयत्नपूर्वक बचना चाहिए। ये लोग रामपाल और राम रहीम से अधिक घातक हैं, क्योंकि अपनी पूजा करवाने को इन लोगों ने मूल ग्रन्थों की ही हत्या कर दी है और शास्त्रों के नाम उन लोगों को मूर्ख बनाने का कार्य करते हैं, जो शास्त्र के गूढ़ अध्ययन से दूर हैं। इनके लिए ही शाक्तानन्द तरङ्गिणी में स्वामी ब्रह्मानन्द कौलाचार्य, शिवजी के निम्न वचन को लिखते हैं -:

कलौ च भारते देवि निन्दका बहवो जनाः।
शिवनिन्दापराः केचिद्विष्णुनिन्दापराः परे॥
सर्वेषां देवतानाञ्च देवीनाञ्च तथैव च।
सततं कुर्वते निन्दां नात्र कुर्युर्विचारणाम्॥

हे देवि कलिकाल में भारत के अधिकतर लोग निंदापरायण होते हैं। कोई शिव निंदा में तत्पर है तो कोई विष्णु निंदा में। ! कोई कोई तो समस्त देवता एवं देवियों की ही सर्वदा निंदा में तत्पर हैं, इस विषय में कोई विचार नहीं करता।

जो वर्णाश्रम का विरोध करके सबको यज्ञोपवीत, संन्यास, गायत्री आदि दे रहे हैं ऐसे इन जैसे लोग एवं इस्कॉन जैसे छद्मावरण वालों के लिए कहते हैं,

आत्मानं वैष्णवं मत्वा अधमा भारते कलौ।
कर्णे कण्ठे तथा हस्ते हृदये नगनन्दिनि॥
विधृत्य तुलसीमालां तिलकं हरिमन्दिरम्।
गृह्णीयुर्हरिनामानि सुस्वराणि गृहे गृहे।
अन्नस्य सञ्चयं कुर्यु॥:पाखण्डा मानवाधमा :
तेषां पापं महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते।
विहाय सन्ध्यां गायत्रीं हरेर्नाम स्मरेद्यदि॥
यान्यक्षराणि नाम्न्येव वसन्ति च शुचिष्मिते।
तावत्सङ्ख्यान्यनेकानि पापानि च पदे पदे॥
(महिषमर्दिनीतन्त्र(

कलियुग में भारत के अधम व्यक्ति स्वयं को वैष्णव मानकर कान, कण्ठ, हाथ तथा हृदय में तुलसीमाला, श्रीतिलक आदि चिह्न धारण करके घर घर मात्र उदरपूर्ति के लिए भगवान का नाम गाते हुए घूमेंगे। हे महेशानि मैं उन लोगों के पापों का ! अवहेलना प) वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ। सन्ध्या तथा गायत्री का ूर्वकपरित्याग करके जो कोई हरिनाम का स्मरण (करता है, उस नाम में जितने अक्षर होते हैं उतने जन्मों तक उसे उतनी संख्या तक बहुत पाप भोगना पड़ता है।

जो रक्षात्मक शासन करे, वह शास्त्र है। शासन शोषण या स्वार्थ का आधार न हो एवं रक्षा के क्रियान्वयन हेतु कर्तव्यविमुखता अथवा कार्पण्यदोष का अवलंबन न लेना पड़े, इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए जो आचार का मार्ग प्रशस्त करे, वह शास्त्र है।

अंग्रेजों और मुगलों से घनश्याम पांडेय के बहुत अच्छे संबंध थे और बहुत सी सुविधा मिली हुई थी। किन्तु वह भूल गया कि,

जीवो रहस्येव विधाय पापं न निष्कृतिं प्रैति हि विश्वमूर्ते।:
सदात्मरूपोऽन्तरतो हि शश्वत् पापञ्च पश्यत्यथ पुण्यकृत्यम्॥

यदि मनुष्य छिपकर भी पाप कर ले तो विश्वमूर्ति ईश्वर से निष्कृति प्राप्त नहीं करता है क्योंकि वह आत्मरूप अंतःकरण में स्थित होकर निरन्तर पाप और पुण्यों को देखता है।
(सनत्कुमार उपपुराण, प्रथम अध्याय, श्लोक (०३ -

शास्त्र वेदादि के समान पूर्ण अपौरुषेय हो, तन्त्र एवं पुराणों की भांति सूत्ररूप में अपौरुषेय तथा ऋषिवृन्द के द्वारा विस्तारित हो, अथवा स्मृति, दर्शन एवं इतिहास ग्रन्थों के समान महामनीषियों के द्वारा प्रणीत हो, अथवा अभिनव एवं भवितव्य सन्त एवं आचार्यों के द्वारा काव्य, भाष्य तथा कारिकाग्रन्थों के माध्यम से पुनरुद्भासित हो, यदि वह रक्षात्मक शासन करने में समर्थ तथा मान्य है तो मेरे मत में उसकी शास्त्रसंज्ञा है।-

आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक धरातल पर जो सिद्धान्त सार्वकालिक हों, अपरिवर्तनीय हों, श्रुतिसम्मत हों एवं चातुर्वर्ण्य तथा चतुराश्रम वर्ग को चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि कराने में समर्थ हों, जिनका समर्थन एवं परस्पर संगत प्रमाण अन्य ग्रन्थों में तथा आचार्यों के आचरण में भी दिखता हो, वे सिद्धान्त शास्त्रोक्त हैं, ऐसा समझना चाहिए।

अर्थ एवं प्रसङ्ग से युक्त भाव ही मान्य होता है। जैसे सुरालय का अर्थ मदिरालय, मंदिर और स्वर्ग तीनों होता है, किन्तु प्रसङ्ग के विरुद्ध अर्थ लेने से अनर्थ होगा। शास्त्र के अनुसार भाव होने से ही कल्याण है। भाव तीनों गुणों के प्रभाव, स्थिति, उद्देश्य और योग्यता के आधार पर निर्भर करते हैं, जबकि शास्त्र इनसे परे और कूटस्थ हैं। सनातन परम्परा में मतदान से निर्णय नहीं लिया जाता, शास्त्रगम्यता से लिया जाता है।

आधुनिक समाज में धर्मशास्त्रों के मूल ज्ञान से लगभग सभी लोग वंचित ही हैं। अतएव मंचस्थ धर्मप्रवक्ताओं का वाक्पटु और वाग्विलासी होना पर्याप्त नहीं, उनमें शास्त्रगम्यता और यथार्थवादिता भी होनी चाहिए। भावबल से भी देखें तो अर्थबल से अविरुद्ध अर्थ ही मान्य होता है, विरुद्ध अर्थ भावविकृति को धारण करने से अमान्य एवं भ्रामक होता है।

बहुत दुर्भाग्य की बात है कि इन लोगों ने स्वामीनारायण का भाष्य, दर्शन आदि सब बना रखा है जो सरकार पाठ्यक्रम में चला भी रही है। काशी विद्वत् परिषत् ने मान्यता भी दे रखी है। वैसे परिषत् ने मान्यता तो श्रीरामभद्राचार्य जैसे अशास्त्रज्ञ प्रक्षिप्तवादियों को भी दे रखी है। ऐसे देवनिन्दक, शास्त्रनिन्दक छद्म पाखण्डी सम्प्रदाय लोक और परलोक दोनों का नाश करते हैं।

धुरन्धर शब्द का अर्थ गधा अवश्य होता है किन्तु उसका अर्थ वृषभ भी होता है। दश गौदान के समान एक वृषभ का दान बताया गया है। भविष्यपुराण, उत्तरपर्व में कहते हैं -

दशधेनुसमोऽनड्वानेकश्चैव धुरन्धरः।
दशधेनुप्रदानाद्धि स एवैको विशिष्यते॥

तो अविद्यावारिधि ने धुरन्धर का अर्थ गधा ही क्यों लगाया ? वृषभ भी लगा सकती थीं और वृषो हि भगवान् धर्मः (स्कन्दपुराण) से धुरन्धर का अर्थ 'धर्म' भी लगा सकती थीं। कोई भी भारवाहक जीव, जिसे वाहन में लगाया जाए, जैसे कि गधा, बैल, घोड़ा आदि सब धुरन्धर ही कहलायेंगे।

गोपालसहस्रनाम, नृसिंहसहस्रनाम, सुब्रह्मण्यसहस्रनाम आदि में भगवान् का एक नाम धुरन्धर भी बताया गया है। काकतीयनरेश महाराज प्रतापरुद्र की प्रशस्ति में विद्यानाथ स्वामी ने प्रतापरुद्रीयम् की रचना की थी जिसमें नायकलक्षण के अन्तर्गत उन्होंने लिखा है -

यशःप्रतापसुभगो धर्मकामार्थतत्परः।
धुरन्धरो गुणाढ्यश्च नायकः परिकीर्त्तितः॥

महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में वचन है -

यमर्थसिद्धिः परमा न हर्षयेत्तथैव काले व्यसनं न मोहयेत्।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं निषेवते यः स धुरन्धरो नरः॥

जिसे परम लाभ प्रसन्न नहीं करता, जो सङ्कट में कभी घबराता नहीं, सुख और दुःख के बीच जो सन्तुलन रखता है, ऐसे व्यक्ति को 'धुरन्धर' कहते हैं।

फिर आगे पुनः बताया -

धर्मतत्त्वमवगाह्य बुद्धिमान्योऽभ्युपैति स धुरन्धरः पुमान्॥

धर्म के तत्त्व को भली प्रकार जानकर जो बुद्धिमान् उसकी प्रयोग एवं सान्निध्यलाभ करता है, वह व्यक्ति 'धुरन्धर' है।

धुरन्धर संहिता के नामकरण में धुरन्धर शब्द का क्या अर्थ है, इसका स्पष्टीकरण सम्पादक श्रीब्रजेश पाठक ज्योतिषाचार्य जी ने भूमिका में ही कर दिया है किन्तु अविद्यावारिधि जी को क्या मतलब है ? दूसरी बात उन्होंने बड़ी हास्यास्पद लिखी है कि संहिता केवल ज्योतिष् में होती है। आप भिड़ने किससे चली हैं, होश है ?

महोदया ! आपने गर्ग संहिता, अगस्त्य संहिता, ऋष्यशृंग संहिता आदि का नाम सुना है ? पाञ्चरात्र आदि में एक सौ आठ से अधिक संहिताएं हैं, उनका नाम सुना है ? आयुर्वेद में भेल संहिता, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, शार्ङ्गधर संहिता आदि का नाम सुना है ? मैं आपको सैकड़ों मान्य संहिताओं के नाम बता सकता हूँ जो ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित नहीं हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप लाइव आकर बखिया उधेड़ ही दें, आपका स्वागत है।

प्रश्नकर्ता शास्त्रों में वर्णन है कि देवी की पूजा दूर्वा से और गणेशजी की पूजा तुलसी से न करे किन्तु कहीं ! आचार्यजी - कहीं पद्धतियों में विधान भी मिल जाता है। ऐसे में भ्रम से बचने केलिए क्या करें ? क्या हमारे ग्रन्थों में मिलावट है ?

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु सर्वप्रथम तो इस भ्रम से बाहर निकलें कि हमारे ग्रन्थों में मिलावट है। काल -, भाव, अधिकार और उद्देश्य के भेद से पद्धतियों में भेद होता है। जैसे पेट्रोल, डीजल, हाइड्रोजन, विद्युत् आदि सभी ऊर्जा के ही योजक हैं किन्तु यन्त्रों में प्रणालीभेद है कि नहीं ? आलू, चना, धान, गेहूँ, बाजरा, दूध, दही आदि सब खाद्य पदार्थ ही हैं किन्तु पाकविधि और उपभोगविधि में भेद है कि नहीं ? ऐसा ही ग्रन्थों के विषय में समझना चाहिए।

सामान्यतः गणेशजी के निमित्त तुलसी तथा दुर्गाजी के निमित्त दूर्वा का निषेध वर्णित है एवं व्यवहार में भी ऐसा ही प्रयुक्त होता है किन्तु कुछ स्थिति या प्रकारभेद से इसमें विहित विधान भी है। श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, पद्मपुराण आदि अनेकों

ग्रन्थों में ऐसा निषेधवाक्य मिलता है। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में कहते हैं -

केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा।
गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दूर्वया॥

किन्तु नारद पुराण में जो गणेश जी का २१ नामावली से अर्चन है उसमें तुलसी का भी विधान है शूर्पकर्णाय तुलसीम्। - यदि भगवान् गणेश केशूर्पकर्णस्वरूप की पूजा करनी हो तो तुलसी से पूजन होगा। साथ ही, स्वरूपभेद के साथ कालभेद ही लागू है। यदि सप्तमी तिथि को पूजन करना है तो गणेशजी के निमित्त तुलसी से अर्चन होगा। (किसी भी रूप में)

गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या विष्णुं समर्चयेत्।
अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम्॥
चतुर्द्दश्यां महेशानं पौर्णमास्यां पितामहम्।
येऽर्चयन्ति च सप्तम्यां तुलस्या च गणाधिपम्॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, द्वारकामाहात्म्य, अध्याय ४३ -, श्लोक (०३-०२ -

अब देवीजी की बात करते हैं। पद्धतियों में मन्त्र प्राप्त होता है -

दूर्वादले श्यामले त्वं महीरूपे हरिप्रिये।
दूर्वाभिराभिर्भवतीं पूजयामि सदाशिवे॥

कुछ विद्वान् कहते हैं कि कालिकोपासना में तो दूर्वा चढ़ जाएगी, समस्या नहीं किन्तु मुख्यतः दुर्गाजी के निमित्त तो सर्वथा निषेध है। मैं इस बात का वैशिष्ट्य प्रस्तुत करता हूँ। भगवान् आद्यशङ्कराचार्यजी ने चौंसठ उपचारों के वर्णन में दुर्गाजी के निमित्त दूर्वा का वर्णन किया है -

दूर्वया सरसिजान्वितविष्णुक्रान्तया च सहितं कुसुमाढ्यम्।
पद्मयुग्मसदृशे पदयुग्मे पाद्यमेतदुररीकुरु मातः॥
गन्धपुष्पयवसर्षपदूर्वासंयुतं तिलकुशाक्षतमिश्रम्।
हेमपात्रनिहितं सह रत्नैरर्घ्यमेतदुररीकुरु मात॥ः

इसमें कुछ लोग कहते हैं कि पाद्यअर्घ्य आदि में सुवासित करने हेतु दूर्वा का प्रयोग है-, इससे अर्चन सिद्ध नहीं होता। ये तो मात्र जलसुवासन के निमित्त है। नारदपुराण भी अर्घ्य विधान में समर्थन करता है -

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्।
दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम्॥

किन्तु ऐसा नहीं है, दूर्वा पूजन हेतु भी प्रयुक्त है। कुमारी पूजन में कहते हैं -

अष्टम्यां दूर्वया गौरीं पूजयामासुरेव च।
अष्टवर्षीयकन्यानां गौरीरूपेण पूजनम्॥

कुछ विद्वान् कहते हैं कि यद्यपि कुमारी का पूजन प्रत्यक्ष देवी के रूप में ही होता है फिर भी देहगत और विग्रहगत अर्चन में भेद तो होता ही है। विग्रहगत अर्चन में दूर्वा का दुर्गादेवी के निमित्त निषेध ही है। इसमें मैं यामलतन्त्र का समाधान प्रस्तुत करता हूँ -

विना वै दूर्वया देवीपूजा नास्ति च कर्हिचित्।
तस्माद्दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी हि सा॥

अब इस तन्त्रवाक्य से तो दूर्वा का स्थान देवीपूजन में अनिवार्य हो गया, फिर दुर्गां नैव तु दूर्वया, इस पौराणिक वचन का क्या होगा ? इसमें स्वामिश्री ब्रह्मानन्द सरस्वती ने शाक्तानन्दतरङ्गिणी मे (कौलाचार्य)ं यामल तन्त्र के ही वचन से समाधान किया है -

दूर्वा निषिद्धेति यदुक्तं तत् श्वेतदूर्वापरम् -
रक्तमाद्य श्वेतदूर्वां नीलकण्ठं कुरुष्टकम्।
न दद्याच्च महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥

जिसके अग्रभाग में रक्तवर्ण हो, कण्ठ नीला हो (जड़ के पास), जो पीलापन लिए अथवा दुर्गन्धयुक्त हो, ऐसी दूर्वा अथवा श्वेतवर्ण वाली दूर्वा को अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति महादेवी को न चढ़ाए।

तात्पर्य यह है कि श्वेतदूर्वा न चढ़ाएं। हरितदूर्वा भी हो किन्तु दूषितविकृत हो तो न चढ़ाएं। मात्र पुष्ट-, स्वस्थ, कोमल हरित दूर्वाङ्कुर से देवीजी का पूजन करें। गणेशजी को सामान्यतः तुलसी नहीं चढ़ती किन्तु शूर्पकर्णस्वरूप की पूजा कर रहे हों अथवा सप्तमीतिथि को पूजन कर रहे हों तो तुलसी चढ़ा सकते हैं। शास्त्रों का रहस्य मात्र अपने से पढ़कर नहीं, अपितु गुरुमुख से परम्परया उसका ज्ञान लेकर ही समझ आता है अतः अपने बल पर शास्त्र को पढ़ना एवं अपने स्तर पर ही उसके मान्य या अमान्य होने का निर्णय दे देना घोर अनर्थकारी है।